लिखना पढ़ना सिखाने की विधियों के बारे में

सीखने-सिखाने के तरीकों में विकास और सुधार की कोई सीमा नहीं होती है। इसलिए शिक्षा में नवाचार की एक अहम् भूमिका है। लेकिन नवाचार कैसे हों? क्या नई विधियां पुरानी विधियों को कूड़ेदान में फेंककर अपनाई जा सकती हैं? या दूसरे परिवेश में विकसित विधियों को हम वैसे के वैसे कहीं भी अपना सकते हैं? नई और पुरानी विधियों के बीच में क्या संबंध हो सकता है? क्या कोई एक रामबाण विधि हो सकती है? ये सभी सवाल अपनी जगह महत्वपूर्ण हैं।

प्रस्तुत है इन्हीं प्रश्नों पर रूस के महान साहित्यकार ***लेव तोलस्तोय*** *का एक लेख। यह लेख सन् 1862 में लिखा गया था। जो लोग शैक्षणिक नवाचारों में रुचि रखते हैं, उनके लिए यह आज भी प्रासंगिक है।*

इस लेख के सतही वाचन से ऐसा प्रतीत होता है कि तोलस्तोय रूढ़िगत तरीकों की वकालत कर रहे हैं और नई विधियों की खिल्ली उड़ा रहे हैं। दरअसल वे अधपके नवाचारों का विरोध कर रहे हैं और सैद्धांतिक अध्ययन से उभरे नवाचार को व्यवहार में प्रचलित परम्पराओं से जोड़ने का तथा कक्षा में शैक्षणिक तरीकों में विविधता को बनाए रखने का आग्रह कर रहे हैं।

तोलस्तोय शिक्षा में गहरी रुचि रखते थे। उन्होनें ग्रामीण बच्चों के लिए पाठशालाएं खोलीं और खुद पढ़ाते भी थे। उस दौरान वे अनेक प्रयोग करते रहे और उन पर लिखते भी रहे। यहां यह बताना भी प्रासंगिक होगा कि गांधी जी तोलस्तोय के विचारों से काफी प्रभावित थे और उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में 'तोलस्तोय फार्म' नामक रहवासी शाला चलाई। इसी अनुभव के आधार पर गांधी जी ने 'बुनियादी शिक्षा' के सिद्धांत को खड़ा किया था।

...पुरानी विधि नई विधि से हमेशा इस कारण उत्कृष्ट होती है कि उसमें सभी नई विधियां समाविष्ट रहती हैं, हालांकि लोगों को उनकी जानकारी नहीं होती, जबकि नई विधि सभी पुरानी विधियों का अपवर्जन कर देती है। नई की तुलना में पुरानी विधि की एक श्रेष्ठता यह भी है कि वह स्वतंत्रतामूलक होती है, जबकि नई विधि बाध्यता पर ज़ोर देती है। आप कहेंगे कि मैं यह क्या बात कर रहा हूं, क्योंकि पुरानी विधि में बेंतें मार-मारकर अक्षर जोड़ना सिखाया जाता है, जबकि नई विधि में बच्चों को 'आप' कहकर संबोधित किया जाता है और उनसे सिर्फ समझने की प्रार्थना की जाती है। बच्चे के लिए यही तो सबसे असहनीय तथा हानिकर हिंसा है, जब उससे भी ठीक वैसे ही समझने को कहा जाता है, जैसे अध्यापक खुद समझता है।

जर्मन सेमिनरी का अध्यापक, जिसने सर्वोत्तम विधि से प्रशिक्षण पाया है, बेधड़क और आत्मविश्वास के साथ कक्षा में आकर बैठता है। पढ़ाई के सभी उपकरण - अक्षर लिखी तख्तियां, पटरियों से युक्त ब्लैकबोर्ड और मछली के चित्र वाली किताब - तैयार हैं। अध्यापक अपने विद्यार्थियों पर एक नज़र डालता है और जान जाता है कि उन्हें क्या समझना चाहिए। वह जान जाता है कि उनकी आत्मा किस चीज़ से बनी है। उसे और भी बहुत सारी बातें मालूम हैं जो उसने सेमिनरी में सीखीं थीं।

वह पुस्तक खोलता है और मछली दिखाता है। "बच्चो! यह क्या है?" कृपया ध्यान दें कि यह Anschauungsunterricht (दृश्य-शिक्षण) है। बच्चे मछली देखकर खुश होते हैं - बेशक अगर उन्होंने अन्य स्कूलों के बच्चों या बड़े भाइयों से नहीं सुना है कि कैसे मछली उन्हें नाकों चने चबवा देगी। कुछ भी हो: वे कहेंगे, "यह मछली है।" "नहीं", अध्यापक उत्तर देता है। (यह सब जो मैं बता रहा हूं कपोलकल्पना या व्यंग्य नहीं है, बल्कि मैं उन्हीं तथ्यों को दोहरा रहा हूं, जो मैंने जर्मनी के निरपवाद रूप से सभी अच्छे स्कूलों में और इंग्लैंड के उन स्कूलों में देखे थे, जहां इस शानदार और उत्कृष्ट विधि को अपनाया जा चुका है।) "नहीं," अध्यापक फिर कहता है और पूछता है: "आप क्या देख रहे हैं?" बच्चे कोई उत्तर नहीं देते। भूलें नहीं कि उनके लिए खामोशी से, अपनी-अपनी जगह पर बिना हिले-डुले बैठे रहना ज़रूरी है - Ruheund gehorsam! (चुप रहो और सुनो!) " हां, तो क्या देख रहे हैं आप?" "पुस्तक" सबसे भोंदू बच्चा बोलता है। जो बुद्धिमान हैं, वे इस बीच हज़ार बार अपना मत बदल चुके हैं कि क्या देख रहे हैं, और अपनी सहजबुद्धि से जानते हैं कि अध्यापक जो सुनना चाहता है, उसे जान पाना उनके लिए कठिन है, और उन्हें कहना चाहिए कि मछली, मछली नहीं है, बल्कि कोई ऐसी चीज़ है, जिसे वे बता नहीं सकते। "शाबाश!"

अध्यापक हर्षपूर्वक कहता है, "बहुत ठीक कहा। पुस्तक है।" बुद्धिमानों का हौंसला बढ़ जाता है और भोंदू खुद भी

नहीं जान पाता कि उसे शाबाशी क्यों दी गई है। "और पुस्तक में क्या है?" अध्यापक पूछता है। बच्चों में जो सबसे चुस्त और तेज़ है, वह भांप जाता है और गर्वमिश्रित हर्ष के साथ जवाब देता है, "अक्षर"। "नहीं","बिल्कुल नहीं, " अध्यापक दुखी आवाज़ में कहता है, "बोलने से पहले थोड़ा सोचना भी

ओर इशारा करता है। "मछली," एक हिम्मती लड़का जवाब देता है। "हां, मछली तो है, पर ज़िंदा मछली नहीं, है न? "नहीं, मछली ज़िंदा नहीं है।" बहुत अच्छा। तो क्या मुर्दा मछली है?" "नहीं" "बहुत ठीक। तो कैसी मछली है?" Ein Bild. यानी तस्वीर है। "बहुत बढ़िया" सभी दोहराते हैं: यह तस्वीर है, और

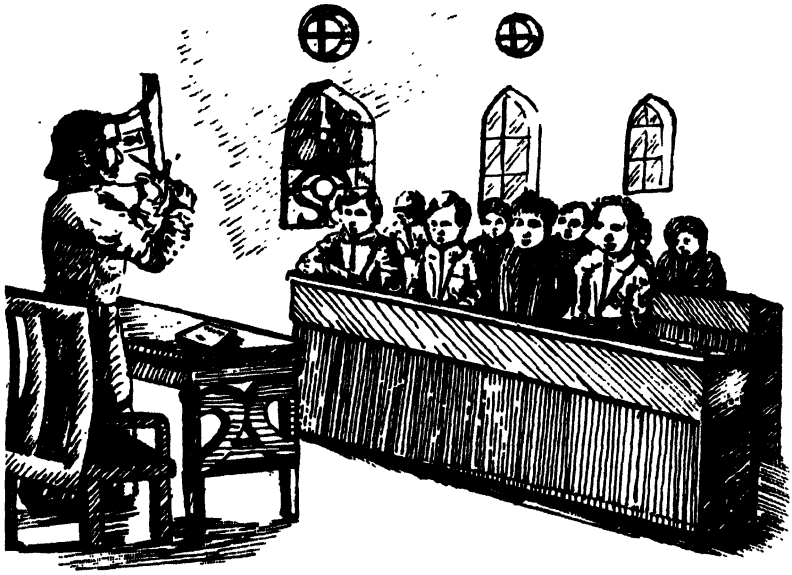

चाहिए।" सभी बुद्धिमान बच्चे फिर मुंह लटकाकर चुप बैठे रहते हैं और जवाब खोजने की बजाए यह सोचते रहते हैं कि अध्यापक का चश्मा कैसा है, क्यों वह उसे उतारता नहीं, क्यों उसमें से देखता रहता है, वगैरह-वगैरह। "हां, तो पुस्तक में क्या है?" सभी चुप रहते हैं। "यह इस जगह पर क्या है?" अध्यापक मछली

सोचते हैं कि अब आगे कुछ नहीं पूछा जाएगा। मगर नहीं, अभी यह भी तो कहना है कि यह तस्वीर है, जिसमें मछली दिखाई गई है। ठीक उसी तरीके से अध्यापक बच्चों से कहलवाता है कि यह तस्वीर है, जिसमें मछली बनी हुई है। उसे लगता है कि बच्चे सोच विचार के बाद ही जवाब दे रहे हैं। उसे एक क्षण के

लिए भी नहीं सूझता कि अगर उसे बच्चों को यह कहने के लिए विवश करने का हुक्म मिला हुआ है कि यह तस्वीर है जिसमें मछली बनी हुई है, या वह खुद ही बच्चों से ऐसा कहलवाना चाहता है तो कहीं आसान होता कि वह इस बुद्धिमत्तापूर्ण उक्ति को उनसे सीधे-सीधे रटवा डालता।

वे बच्चे तो भाग्यशाली हैं, जिन्हें अध्यापक इतने पर ही छोड़ देता है। मैंने खुद देखा है कि कैसे उसने उन्हें यह कहने को बाध्य किया था कि यह मछली नहीं, बल्कि एक चीज़ है - Ein Ding - और यह चीज़ मछली है। कृपया ध्यान दें कि यह अक्षरज्ञान के साथ जोड़ा हुआ नया दृश्य-शिक्षण है, यह बच्चों को सोचने के लिए बाध्य करने की कला है।

जब - दृश्य-शिक्षण खत्म हो जाता है, तो शब्द के विच्छेदन की बारी आती है। तख्तियों पर लिखे अक्षरों से बना हुआ "मछली" शब्द दिखाया जाता है। अच्छे और तेज़ विद्यार्थी सोचते हैं कि यहां वे अपनी प्रतिष्ठा बहाल कर लेंगे, और तुरंत अक्षरों की आकृति तथा नाम याद करने लगते हैं। लेकिन होता कुछ और है। "मछली के आगे क्या है?" सहमे हुए बच्चे कोई जवाब नहीं देते। आखिरकार एक लड़का बड़ी हिम्मत करके कहता है: "सिर"। "बहुत ठीक। मगर सिर कहां है?" "आगे" "बहुत अच्छा। और सिर के बाद क्या है?" "मछली"। "नहीं, फिर सोचिए।" उन्हें कहना चाहिए: शरीर, Leib। यह भी कह दिया जाता है, लेकिन बच्चे अब तक सारी आशा और सारा आत्मविश्वास खो चुके हैं और उनकी सारी बौद्धिक शक्ति यही अटकल लगाने पर केंद्रित है कि अध्यापक क्या सुनना चाहता है, सिर, शरीर और मछली का अंतिम भाग पूंछ। बहुत अच्छा! सभी सहसा बोल उठते हैं, "मछली के सिर, शरीर और पूंछ होते हैं।" "यह अक्षरों से बनी हुई मछली है और यह तस्वीर में बनी हुई मछली है।" अक्षरों से बनी मछली सहसा तीन भागों में बंट जाती है: म, छ और ली। अध्यापक जादूगर जैसे आत्मसंतोष के साथ म को अलग करता है, दिखाता है और कहता है. "यह सिर है. छ शरीर है और ली पूंछ है" और फिर हर अक्षर का उच्चारण बार-बार दोहराता है।

वह यह सलाह देकर बेचारे बच्चों की मदद नहीं करता कि म का उच्चारण मकान, मंदिर से, छ का उच्चारण छतरी, छलनी से और ल का उच्चारण लड़का, लड्डू, आदि से याद कर लें, बल्कि जिद करता है कि वे उनका सही उच्चारण बिना किसी शब्द से जोड़े हुए ही अथवा बिना सचित्र ककहरे की मदद से ही सीखें।

वह उन्हें अक्षर-संयोजनों को, यदि वे उन्हें नहीं जानते, तो याद कर लेने और जो परिचित हैं, उसे पढ़ने की इजाज़त नहीं देता। संक्षेप में, वह समझता है कि मछली - पुस्तक विधि के अलावा और विधियां जानना उसका कर्तव्य नहीं है और इसलिए वह और सब कुछ की अपेक्षा करता है।

अक्षरज्ञान पाने के लिए विधि है, और सोचने की शक्ति के आरंभिक विकास

के लिए भी दृश्य-शिक्षण है। दोनों को संयोजित किया जाता है और बच्चों को इन सुई की आंखों से गुज़रना पड़ता है। हर उपाय किया जाता है कि स्कूल में इस मार्ग पर चलने से जो विकास होता है, उसके अलावा और कोई विकास न होने पाए। हर तरह की हरकत, शब्द, प्रश्न वर्जित हैं। Die Hande fein zusammen! Ruhe und Gehorsam! हाथ ठीक से रखो! चुप रहो और सुनो! ऐसे लोग भी हैं, जो "ब+अ = बा" विधि का मज़ाक उड़ाते हुए कहते हैं कि यह सोचने की क्षमता खत्म करनेवाली विधि है, कि इसके बजाए Lautier-methode in Verbindung mit Anschauungsunterricht (स्वनिक और दृष्टिमूलक विधियों को मिलाकर बनाई हुई विधि) इस्तेमाल की जानी चाहिए, यानी वे प्रार्थनाओं तथा भजनों के बजाए यह रटने की सलाह देते हैं कि मछली एक चीज़ है, कि म सिर है, छ शरीर है तथा ली पूंछ।

अंग्रेज़ और फ्रांसीसी शिक्षाशास्त्री ज़बानतोड़ होने के बावजूद दृश्य-शिक्षण शब्द का सगर्व उच्चारण करते हैं और कहते हैं कि वे उसे शिक्षण के बिल्कुल आरंभ में ही इस्तेमाल करने लग जाते हैं। मगर हमें यह 'दृष्य शिक्षण' बिल्कुल ही अस्पष्ट चीज़ लगती है। सचमुच, यह अध्यापन की दृष्टिमूलक विधि क्या है? अध्यापन क्या दृष्टिमूलक के अलावा किसी और प्रकार का भी हो सकता है? शिक्षण में पांचों इंद्रियां भाग लेती हैं और इसलिए वह दृष्टिमूलक पहले भी था और आगे भी रहेगा।

यूरोपीय स्कूल के संदर्भ में, जो

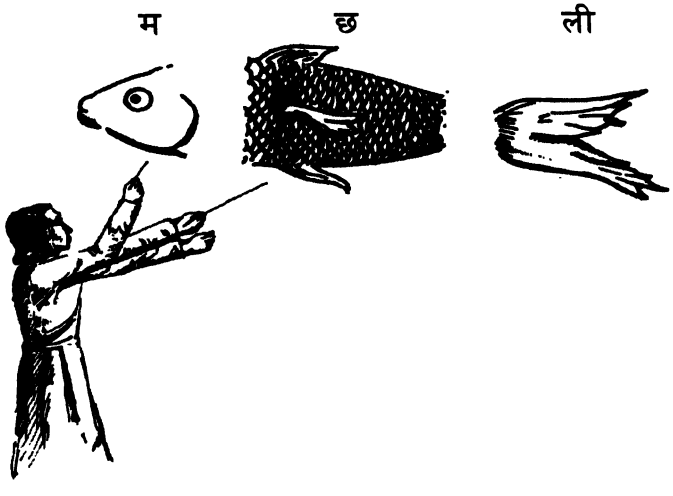

मध्ययुगीन आकारवाद से मुक्ति पा रहा है, दृष्टिमूलक शिक्षण की बात समझ में आ सकती है, क्योंकि उसे पहले के शिक्षण के विरोध में रखा जाता है। इसी तरह उसके संदर्भ में वे गलतियां भी क्षम्य हैं, जो पुरानी विधि की मात्र बाह्य युक्तियों को बदलकर यथावत् बनाए रखने की शक्ल में प्रकट होती हैं। मगर मैं दोहराता हूं कि हमारे लिए तो दृश्य-शिक्षण की नकल करने में कोई तुक नहीं है।

सारे यूरोप में इस दृश्य-शिक्षण का गंभीर अध्ययन कर लेने पर भी मुझे अभी तक उसमें कोई खूबी नहीं दिखाई दी है, सिवाय इसके कि अगर उभारदार मानचित्र उपलब्ध है, तो भूगोल को उसकी मदद से पढ़ाया जाना चाहिए, रंगों को रंगों की मदद से, रेखागणित को आरेखों की मदद से, प्राणी-विज्ञान को जीव-जंतुओं की मदद से, आदि-आदि और यह एक ऐसी बात है, जिसे हममें से हर कोई जन्म से ही जानता है तथा जिसके लिए दिमाग खपाने की तनिक भी ज़रूरत नहीं है, क्योंकि प्रकृति इसमें अपना दिमाग बहुत पहले ही खपा चुकी है, जिसकी वजह से इसे हर कोई जानता है, बेशक अगर उसके दिमाग में उल्टी बातें घर न कर गई हों।

और इन तथा इनके ढंग की अन्य विधियों को कुछ निश्चित मान्यताओं के अनुसार अध्यापक प्रशिक्षित करने की विधियों को अपनाने की सलाह हमें भी दी जा रही है - हमें, जो 19वीं सदी के उत्तरार्ध में अपने स्कूल आरंभ कर रहे हैं, इतिहास के बोझ तथा गलतियों से अभी तक मुक्त नहीं हैं, उससे बिल्कुल भिन्न चेतना रखते हैं, जिसपर यूरोपीय स्कूल का ढांचा टिका हुआ था। इन विधियों के झूठी होने की बात और वे विद्यार्थियों की आत्मा पर जो ज़ोर ज़बरदस्ती करती हैं, उसकी बात अगर जाने भी दें, तो भी सवाल तो रहता ही है: हम, जिनके यहां बाराखड़ी विधि से पादरी छह महीने में लिखना पढ़ना सिखा देता है, Lautier-anschauungsunterric (स्वनिक तथा दृष्टिमूलक विधियो) को मिलाकर बनाई हुई विधि को भला क्यों अपनाएं, अगर उससे लिखना-पढ़ना सीखने में साल भर से भी ज़्यादा लग जाता है?

हम ऊपर बता चुके हैं कि हमारे मत में हर विधि अच्छी है और हर विधि एकांगी है। हर विधि किसी न किसी भाषा तथा जाति के लिए अधिक उपयुक्त होती है।

तो रूसी भाषा लिखना-पढ़ना सिखाने के लिए सर्वोत्तम विधि कौन-सी है? यह न तो नई स्वनिक विधि, न सबसे पुरानी वर्णमाला, वर्ण-संयोजनों तथा अर्थों को रटने की विधि, न स्वरों की विधि और न ही जोलोतोव की विधि है। संक्षेप में, सर्वोत्तम विधि कोई नहीं है। किसी भी अध्यापक के लिए सर्वोत्तम विधि वह है, जिसे वह सबसे अच्छी तरह जानता है। अन्य जो विधियां वह जानता है या जिन्हें उसने ईजाद किया है, उन्हें पूर्वोक्त विधि से आरंभ किए गए अध्यापन में मददगार ही होना चाहिए। हर जाति और हर भाषा के लिए कोई एक विधि ही अन्य विधियों की अपेक्षा अधिक उपयुक्त होती

है। इस विधि को मालूम करने के लिए यही जानना काफी होगा कि वह जाति सबसे ज़्यादा समय तक किस विधि के अनुसार सीखती रही है। यही विधि उस जाति या जनता की प्रकृति के अनुरूप होगी। हमारे लिए यह वर्णमाला, वर्णमाला संयोजन तथा अर्थ याद करने की विधि है; जिसमें अन्य विधियों की अच्छी बातों का समावेश करके पहले से बेहतर बना सकते हैं। हर व्यक्ति को, ताकि वह जल्दी से लिखना-पढ़ना सीख सके, औरों से बिल्कुल भिन्न ढंग से पढ़ाया जाना चाहिए, और इसलिए हरेक के लिए अलग, विशिष्ट विधि होनी चाहिए। एक को जो दुर्लंघ्य बाधा लगती है, दूसरे को वह बिल्कुल नहीं रोक पाती। एक विद्यार्थी की स्मृति प्रबल होती है और उसके लिए व्यंजन की स्वरहीनता को समझ पाने की बजाए बाराखड़ी याद करना अधिक आसान होता है; दूसरा स्वनिक, सबसे तर्कसंगत विधि को बड़ी सहजता से समझ जाता है; तीसरे का सहजज्ञान या सहजबुद्धि प्रबल होती है और वह पूरे शब्दों को पढ़ते हुए शब्दों के संयोजन को हृदयंगम कर लेता है।

सर्वोत्तम अध्यापक वह होगा जिसके पास ऐसी हर चीज़ का स्पष्टीकरण तैयार होगा, जिसने विद्यार्थी को रोका था। ये स्पष्टीकरण उसे अधिकतम विधियों का ज्ञान, नई विधियां विकसित करने की क्षमता और जो सबसे मुख्य बात है - किसी एक विधि में अंध आस्था नहीं बल्कि यह दृढ़ विश्वास प्रदान करते हैं कि सभी विधियां एकांगी हैं और सर्वोत्तम विधि वह होगी, जो विद्यार्थी के सामने आने वाली सभी संभव कठिनाइयों का समाधान करती है, यानी जो विधि नहीं बल्कि कला और प्रतिभा है।

लिखना-पढ़ना सिखानेवाले हर अध्यापक को एक विधि का, जनता के बीच विकसित हुई विधि का, पक्का ज्ञान होना चाहिए और उसे अपने अनुभव की कसौटी पर परखना चाहिए। उसे अधिक से अधिक विधियां जानने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहना चाहिए। और उन्हें आनुषंगिक साधन ही समझना चाहिए। (उसे चाहिए कि विद्यार्थी की समझने की कठिनाइयों को उसकी कमी न माने, बल्कि अपने अध्यापन की कमी माने और अपने में नई शिक्षण युक्तियां ईजाद करने की योग्यता विकसित करे।) हर अध्यापक को मालूम होना चाहिए कि हर नवाविष्कृत विधि मात्र एक सीढ़ी ही है, जिसपर केवल इसीलिए रुका जाना चाहिए कि आगे जाना है। उसे जानना चाहिए कि अगर वह स्वयं ऐसा नहीं करेगा, तो कोई दूसरा उस विधि को सीखकर उसके आधार पर आगे बढ़ जाएगा, और यह भी कि चूंकि अध्यापन एक कला है, इसलिए पूर्णता प्राप्त कर पाना असंभव है, जबकि विकास और सुधार की कोई सीमा नहीं है।

पुस्तक - शिक्षाशास्त्रीय रचनाएं, लेखक - लेव तोलस्तोय
अनुवादक - बुद्धिप्रसाद भट्ट, प्रकाशक - प्रगति प्रकाशन मास्को, मूल्य - 15 रुपए